चमड़ा पकाने में देशी टेक्नॉलॉजी

वी. सुजाता

भारत में, और खासकर तमिलनाडु में चमड़ा उद्योग का लंबा इतिहास रहा है। टैनिंग यानी चमड़ा पकाने की प्रक्रिया में चमड़े को सड़ने से बचाने की व्यवस्था की जाती है; इसके लिए वनस्पति पदार्थों का भी उपयोग किया जाता है और रसायनों का भी। पारम्परिक रूप से स्थानीय पेड़ों की छाल और फलियों का उपयोग चमड़ा पकाने में किया जाता रहा है। वनस्पति पदार्थों की मदद से चमड़ा पकाना, रंग करना और फिनिशिंग करना तमिलनाडु में प्राचीन समय से प्रचलित रहे हैं। इसका ज़िक्र संगम साहित्य में मिलता है।

अट्ठारवीं सदी में यह एक कुटीर उद्योग था। इस काम को मूलतः चक्किलियार समुदाय करता था। चक्किलियार मद्रास प्रेसिडेंसी में एक तेलगु भाषी समुदाय था। ये लोग चमड़ा पकाने व चमड़े के सामान बनाने का काम करते थे। शहरों में चमड़े के जूतों, घोड़ों की जीन वगैरह जैसी चीज़ों की ज़रूरत होती थी। गांवों में भी चमड़े की कई चीज़ें प्रचलित थीं - मशक, पशुओं के लिए पट्टे वगैरह में चमड़े का उपयोग होता था। इस क्षेत्र में आवरम वृक्ष (कैसिया ऑरिकुलेटा) की छाल से चमड़ा पकाया जाता था।

चमड़ा उद्योग में ब्रिटिश लोगों के हस्तक्षेप के साथ ही इस उद्योग का शहरीकरण हो गया। इसके परिणामस्वरूप इस उद्योग में लगे समुदाय की सामाजिक गतिशीलता बढ़ी और वनस्पति पदार्थों से चमड़ा पकाने की तकनीक में सुधार आया। वाट और चेटर्टन जैसे ब्रिटिश अफसरों ने दक्षिण भारत में वनस्पतियों से पकाए गए चमड़े की बढ़िया क्वालिटी का ज़िक्र किया था। उन्नीसवीं सदी के अंत की जनगणना के आंकड़ों से पता चलता है कि कम से कम डेढ़ लाख कारीगर मात्र चमड़े की वस्तुएं बनाने के काम में लगे थे। चेटर्टन का अनुमान था कि उस समय मद्रास प्रेसिडेंसी में करीब 2 करोड़ रुपए मूल्य के चमड़े का उपयोग होता था।

चमड़ा उद्योग का कच्चा माल मूलतः मरे हुए जानवरों से प्राप्त होता था। भारत में दुनिया के किसी भी देश से ज़्यादा मवेशी थे। लिहाज़ा यहां चमड़ा उद्योग के लिए भरपूर कच्चा माल उपलब्ध था। इस बात ने ब्रिटिशों का ध्यान आकर्षित किया। जल्दी ही कच्चा चमड़ा और अधपका चमड़ा भारत से इंग्लैण्ड को होने वाले निर्यात का एक प्रमुख आइटम बन गया। यह बीसवीं सदी के शुरू की बात है। टैनिंग के लिए चमड़े की मात्रा व गुणवत्ता बढ़ाने के लिए म्युनसिपल बूचड़खाने स्थापित कर दिए गए।

कच्चा चमड़ा गांव से हटकर निर्यात के बाज़ार में पहुंच गया। आर.एन.एल. चन्द्रा के मुताबिक विदेशी प्रतिस्पर्धा का प्रभाव दोहरा होता है। एक ओर तो कच्चा माल महंगा हो जाता है तथा दूसरी ओर तैयार माल की कीमतें गिरने लगती हैं।

कच्चे माल के अभाव तथा विदेशी प्रतिस्पर्धा के चलते कमज़ोर हो रहे भारतीय चमड़ा उद्योग को सुदृढ़ करने के लिए अल्फ्रेड चेटर्टन ने सुझाव दिया कि यहां क्रोम टैनिंग शुरू की जाए। ब्रिटिश व्यापारिक लॉबी ने इस प्रस्ताव का जमकर विरोध किया क्योंकि इससे उनके आर्थिक हितों पर आंच आती। अलबत्ता लंबी बहस के बाद 1930 के आसपास भारत की कुछ टैनरियों ने क्रोम टैनिंग का काम शुरू किया। मगर 1952 तक देश की लगभग 43 प्रतिशत खालें ग्रामीण टैनरियों में ही पकाई जाती थीं। 1952 में राज्य प्रायोजित क्रोम टैनिंग शुरू हुआ।

आधुनिक चमड़ा उद्योग

आधुनिक चमड़ा उद्योग विभिन्न क्षेत्रों में गठित हैं -

आंशिक प्रोसेसिंग (वनस्पति या क्रोम), फिनिशिंग और डाईंग। इसके अलावा चमड़े की वस्तुएं बनाने का अलग कारोबार है। क्रोम टैनिंग के द्वारा बड़े पैमाने पर बेहतर क्वालिटी का चमड़ा तैयार किया जा सकता है। आज़ादी के बाद बगैर ज़्यादा बहस के इसे अपना लिया गया था। इस प्रक्रिया से उत्पन्न प्रदूषण को संभालने या रसायनों का उपयोग करने वाले मज़दूरों की सुरक्षा पर ज़्यादा बातचीत नहीं हुई थी। चमड़ा उत्पादन में सुधार लाने की दृष्टि से 1950 के दशक में चेन्नै में केंद्रीय चमड़ा अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गई। दूसरी ओर, प्रदूषण की समस्या तथा चमड़े व खालों को हैण्डल करने को तैयार मज़दूरों के अभाव में पश्चिमी देशों ने क्रोम टैनिंग कमोबेश बन्द कर दी।

भारतीय चमड़ा उद्योग में एक महत्वपूर्ण मोड़ 1973 में सीतारमैय्या समिति की सिफारिशों के लागू होने के साथ आया। समिति ने सुझाव दिया था कि कच्चे व अधपके चमड़े का निर्यात बंद कर दिया जाए और मात्र फिनिश्ड व रंग किया हुआ चमड़ा ही निर्यात किया जाए। यह तो पहले से पता था कि चमड़े की फिनिशिंग व रंग करने में प्रयुक्त रसायन अत्यंत हानिकारक होते हैं। यू.एस. व युरोप में फिनिशिंग व रंग करने पर इसीलिए प्रतिबंध है। यदि ठीक ढंग से प्रदूषण नियंत्रण किया जाए तो फिनिश्ड चमड़ा बहुत महंगा पड़ता है। चूंकि भारत में प्रदूषण नियंत्रण के मानक कमज़ोर हैं और मज़दूर अनपढ़ हैं, इसलिए चमड़े का निर्यात एक आकर्षक धंधा है, खासकर विदेशी मुद्रा की भूखी सरकार के लिए।

तमिलनाडु चमड़ा उद्योग में प्रमुख प्रान्त रहा है। देश से निर्यात किए जाने वाले चमड़े व चमड़े से बनी वस्तुओं का 60 फीसदी तमिलनाडु से ही आता है। देश की 1083 में से 900 टैनरियां तमिलनाडु में हैं। यह उद्योग आर्काट तथा डिंडिगुल ज़िलों में केंद्रित है। इन इलाकों की मिट्टी खेती के लिए अनुपयुक्त है और यहां का भूजल क्रोम व सीसे के कारण बुरी तरह प्रदूषित है। फिर भी भारतीय चमड़ा उद्योग में ढांचा समायोजन शुरू किया गया और फिनिश्ड चमड़े के निर्यातकों को 25 फीसदी नगद सब्सिडी प्रदान की गई। इस समायोजन का ही नतीजा था कि 1976-80 के दरम्यान चमड़ा पकाने की इकाइयों का आकार बढ़ा और 6000 नौकरियां पैदा हुईं। पूंजी का बोलबाला भी बढ़ा क्योंकि रसायन आयात करना पड़ते हैं। 1980-81 में चमड़ा निर्यात 4889 करोड़ पर पहुंच गया। विदेशी मुद्रा में इस वृद्धि के साथ-साथ पर्यावरण का विनाश हुआ और मज़दूरों की माली हालत व सेहत दोनों बिगड़ते गए।

इस उद्योग में कुशल-अकुशल दोनों तरह के मज़दूर हैं। अधिकांश अकुशल मज़दूर खालों की सफाई करने, मांस व बाल हटाने और चमड़े को रसायनों में भिगोने का काम करते हैं। इन मज़दूरों को अस्थाई रखा जाता है और बहुत कम वेतन दिया जाता है। ये लोग नंगे हाथों से घातक रसायनों को हैण्डल करते हैं और तमाम किस्म की सांस की बीमारियों व चर्म रोगों से ग्रस्त रहते हैं। लगभग सारे ऐसे मज़दूर (करीब 95 प्रतिशत) अरुन्दतियार हैं जो पहले चक्किलियार कहलाते थे। दक्षिण भारत में लोग पारम्परिक रूप से चमड़े का काम करते आए हैं। ये अनुसूचित जातियों में आते हैं और उनमें भी ये आर्थिक रूप से सबसे नीचे हैं। चमड़ा क्षेत्र में बड़ी इकाइयों को काफी नीतिगत समर्थन प्राप्त है जबकि ये इकाइयां सालाना 2.41 करोड़ जोड़ी जूतों का उत्पादन करती हैं। दूसरी ओर कुटीर उद्योग में लगे कारीगर प्रति वर्ष 15.5 करोड़ जोड़ी जूतों का निर्माण करते हैं मगर इन्हें किसी तरह के ऋण या अन्य सुविधाएं नहीं मिलतीं।

फिलहाल सरकार चमड़ा उद्योग को बढ़ावा देने के उपाय कर रही है ताकि विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा 3.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत किया जा सके। मगर आंकड़ों को देखें तो उद्योग में व्याप्त विसंगतियां उजागर होती हैं। भारत में चमड़ा विदेशी मुद्रा कमाने के मामले में चौथे स्थान पर है और इसमें तमिलनाडु का हिस्सा करीब 70 प्रतिशत है। मगर मज़दूरों की हालत शोचनीय है - उन्हें प्रतिदिन 50 रुपए से कम मज़दूरी मिलती है और वे अत्यंत अस्वास्थ्यकर हालातों में जीते हैं और सेहत व पर्यावरण पर हो रहे

असर को तो कोई गिनता ही नहीं।

देशी तकनीक

स्थानीय बाज़ारों से कच्चा माल बाहर निकल जाता है। यही प्रमुख वजह है कि तमिलनाडु में ग्रामीण टैनरियों का व्यवसाय ठप्प-सा हो गया है। यह गिरावट सरकार द्वारा फिनिशिंग व डाईंग में हाईटेक उद्योग की स्थापना के साथ ही शुरू हुई थी। करीब 90 प्रतिशत अरुन्दतियार खेतों में मौसमी मज़दूरी करने लगे हैं या टैनरियों और बूचड़खानों में दिहाड़ी करते हैं। आधुनिक चमड़ा उद्योग में ये लोग किसी निरीक्षक या तकनीकी पद पर नहीं पहुंचे हैं। कई जगहों पर ये लोग नगरपालिका के लिए मवेशियों की लाशें ढोने का काम करते हैं। एक अध्ययन के मुताबिक इनमें से मात्र एक फीसदी लोग ही निम्न स्तर की सरकारी नौकरी पा सके हैं। कई जगहों पर ये बंधुआ मज़दूरों की तरह भी काम करते हैं। चेन्नै में 300 वर्ष पुरानी एक अरुन्दतियार बस्ती है, जहां जानवर काटे जाते हैं और हालात अत्यंत अस्वास्थ्यकर हैं।

1950 से पहले अरुन्दतियार लोगों की आर्थिक हालत इतनी बुरी नहीं थी क्योंकि उस समय वे ही चमड़े का पूरा व्यवसाय करते थे। अलबत्ता उस समय भी सामाजिक रूप से वे शोषित थे। अब वे उस सामाजिक भेदभाव के साथ-साथ आर्थिक तकलीफें भी भुगत रहे हैं।

बहरहाल, सारी बाधाओं के बावजूद आज भी तमिलनाडु के कुछ इलाकों में चमड़ा पकाने की देशी तकनीक का उपयोग किया जाता है। 1997-98 में किए गए एक अध्ययन से पता चला था कि 200 में से 25 गांवों में यही प्रमुख धंधा था। ग्रामीण टैनर माह में करीब 25-30 खालों को पकाकर 2500 रुपए कमा लेते थे। देखा गया कि टैनिंग का काम करके एक ग्रामीण टैनर पर्याप्त आमदनी कमा लेता है।

तमिलनाडु में चमड़ा पकाने के लिए *कैसिया ऑरिकुलेटा* की छाल, *अकेसिया अरेबिया, कैसिया फिस्टुला, फायलेंथस निज़ुरी* और *मायराबोलन्स* की छाल व फलियों का उपयोग किया जाता है। काजू के छिलके (मुंतिरी पोट्टु) का इस्तेमाल मात्र डिंडिगुल क्षेत्र में भैंसे के चमड़े को पकाने में किया जाता है। अलग-अलग क्षेत्रों में इस तरह की विभिन्न चीज़ों का उपयोग होता है। चमड़ा पकाने के घोल का रंग व गुण इस बात पर निर्भर करते हैं कि उसमें कौन-कौन से पदार्थ डाले गए हैं। डाले जाने वाले पदार्थों का चुनाव पकाए जाने वाले चमड़े की किस्म पर आधारित होता है। यह घोल, चमड़ा भिगोने से पहले, कई मवेशी रोगों के इलाज में भी लाभदायक होता है।

जहां क्रोम टैनिंग से निकलने वाले अवशिष्ट पदार्थ पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए खतरनाक होते हैं, वहीं वनस्पति टैनिंग के बाद बचे पदार्थ पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं पहुंचाते और प्रायः फिर से इस्तेमाल योग्य होते हैं। फिर से इस्तेमाल न भी हो सकें, तो भी ये पदार्थ सड़ने योग्य होते हैं। इन पदार्थों का उपयोग खाद के रूप में भी किया जाता है।

अरुन्दतियार लोगों द्वारा वनस्पति पदार्थों से पकाया गया चमड़ा मशक, पशुओं के लिए पट्टे आदि बनाने में उपयोगी होता है। इसका उपयोग जूते बनाने में भी किया जाता है। चरवाहे इस चमड़े के जूते बहुत पसंद करते हैं क्योंकि ये मज़बूत होते हैं, टिकाऊ होते हैं और इसमें कांटे चुभने वगैरह का डर नहीं रहता। कई अन्य कार्यों में भी यह चमड़ा उपयुक्त पाया गया है।

यह सही है कि कई अरुन्दतियार युवा चाहते हैं कि चमड़े से उनका पिण्ड छूटे। कई युवा लोग सरकारी बाबू भी बन गए हैं। मगर आज भी बड़ी संख्या में लोग चमड़े के काम में रुचि रखते हैं बशर्ते कि व्यवसाय की बाधाओं को दूर किया जाए।

एक प्रयोग के तौर पर तमिलनाडु के विभिन्न इलाकों से वनस्पति द्वारा पकाया गया चमड़ा प्राप्त करके शहरों के चमड़ा उद्योग को उपलब्ध कराया गया था। देखा गया कि थोड़ा-बहुत तकनीकी सुधार करके इस चमड़े का उपयोग हैण्डबैग, जूते, फाइलें, बेल्ट वगैरह बनाने में किया जा सकता है। कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में स्थानीय चमड़ा पकाने वालों के साथ काम कर रहे गैर सरकारी

संगठनों ने बताया है कि वनस्पति टैनिंग व्यावहारिक है और इससे समुदाय सशक्त हो सकता है। यदि इन टैनर्स का सम्बंध शहर के उन छोटे उद्यमियों से जोड़ दिया जाए जो तैयार चमड़े की ऊंची कीमतों से त्रस्त हैं, तो दोनों की समस्या हल हो सकती है।

आधुनिक तकनीकों के हिमायती कहते हैं कि वनस्पति टैनिंग तकनीक अकार्यक्षम है। उनका मानना है कि एकमात्र समस्या यह है कि चमड़ा कारीगरों के पास ज्ञान नहीं है, इसलिए उनको आधुनिक विधियों का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। ऐसे पाठ्यक्रम चलाए भी गए मगर इनमें ज़्यादा छात्र नहीं आए। कारण यह है कि अरुन्दतियार के अलावा और कोई तो इन पाठ्यक्रमों में पढ़ने आता नहीं और अरुन्दतियार जानते हैं कि वे बड़ी-बड़ी क्रोम टैनरियों से प्रतिस्पर्धा कर नहीं पाएंगे।

वैसे भी क्रोम टैनिंग में बहुत पैसा लगता है और प्रदूषण नियंत्रण का भारी तामझाम करना पड़ता है, जो एक कुटीर इकाई में सम्भव नहीं है। दरअसल चमड़ा उद्योग इसी समस्या से जूझ रहा है कि प्रदूषण नियंत्रण की आर्थिक रूप से कार्यक्षम व्यवस्था क्या हो। लिहाज़ा आधुनिक टेक्नॉलॉजी तो वैसे ही व्यावहारिक नहीं है। यह भी कहा जाता है कि वनस्पति टैनिंग से प्राप्त चमड़ा अच्छी क्वालिटी का नहीं होता। इसके मुकाबले फिनिश्ड चमड़ा कहीं बेहतर होता है और उसका उपयोग जैकेट, पर्स वगैरह बनाने में किया जा सकता है।

मुद्दा यह है कि गुणवत्ता वास्तव में उपयोगकर्ता पर निर्भर है। यदि उपयोगकर्ता युरोप का कोई व्यक्ति है जिसके लिए हम अपने पर्यावरण और लाखों लोगों की जीविका और सेहत को तबाह करेंगे, तो क्रोम टैनिंग बेहतर है। मगर यदि उपयोगकर्ता कोई स्थानीय व्यक्ति है जिसकी ज़रूरत की पूर्ति करते हुए हमारे कारीगरों की जीविका पर भी आंच न आए और पर्यावरण भी बर्बाद न हो, तो वनस्पति टैनिंग ही बेहतर है। कहने का मतलब यह नहीं है कि देशी ज्ञान प्रणाली गरीबों की हर समस्या का रामबाण इलाज है मगर कुछ देशी ज्ञान ग्रामीण समुदाय के हालात में सुधार ला सकता है ताकि वे देख सकें कि आधुनिक दुनिया क्या है। ***(स्रोत फीचर्स)***

अगले अंक में

स्रोत मार्च 2003
अंक 170

- नदियों को जोड़ने की खामख्याली
- जैविक एवं रासायनिक युद्ध के खतरे
- पेट्रोलियम का उपयोग : वरदान या विनाश
- शांति के लिए गोली
- शून्य की खोज : भारत का योगदान